हेमवती नंदन बहुगुणा

'...पर अब प्रजातंत्र पुनः स्थापित कर दिया गया है'

सत्ता खोने के 28 महीने बाद इंदिरा जी पुनः चुनाव लड़कर जीत कर आईं, और सरकार बनाई। तो राजनीतिज्ञों के ज़हन में तो स्थापित हो गया कि राजनीति का मतलब ही यह है कि ''पावर एट एनी कॉस्ट'', यानी सत्ता में आना ही चाहिये, चाहे इसके लिए कुछ भी कीमत चुकानी पड़े। नशे की व सरकारी रूतबे की एक सी ही फितरत होती है। नियमित खुराक (डोसेज) बढ़ाती रहनी पड़ती है, वही पुराना ''सरूर'' पाने के लिए। और जब ''मॉरल कम्पास'' पहले ही, इंदिरा जी के समय में, इमरजैंसी के दौरान तोड़ चुके थे तो ''अपराध बोध'' (गिल्ट) का सवाल ही कहां उठता है। राजनीतिज्ञों को ''मॉरल कम्पास'' तोड़ने में इतनी आसानी इसलिए भी हुई कि वो अपना ''आइडियोलॉजिकल कम्पास'' पहले ही खो चुके थे।

अपने आंदोलन के साथी मित्रों की एकमत राय व दबाव के बावजूद जे.पी. ने यह खतों की पोटली इंदिरा जी को सौंपने का निश्चय किया, क्योंकि वे कतई नहीं चाहते थे, कि ये खत किसी ऐसे हाथों में पहुंच जायें, जो इन खतों से प्राप्त व्यक्तिगत जानकारियों का राजनीतिक दुरुपयोग करे, अतः वे दिल्ली गये, और इंदिरा जी को यह पोटली दी। यह जे.पी. की मृत्यु से दो साल पहले की बात थी। मुलाकात के दौरान इंदिरा जी ने जे.पी. से आग्रह किया, जे.पी. से मदद मांगी व कहा कि आप अपनी आलोचना का तीखापन कुछ कम कर दें। जे.पी. ने कहा, भ्रष्टाचार के खिलाफ युद्ध लड़ रहे हैं। इंदिरा जी ने कुछ नाराज़गी जताते हुए तपाक से पूछा, ''क्या आप यह कह रहे हैं, मैं व्यक्तिगत रूप से भ्रष्ट हूं?'' जे.पी. ने सीख देते हुए कहा कि, जो सबसे ऊपर बैठते हैं, उन्हें जिम्मेदारी तो लेनी ही पड़ती है। तथा वे (जे.पी.) एक परिवर्तन लाने के लिए एक आंदोलन चला रहे हैं, इसमें व्यक्तिगत कुछ भी नहीं है।

सरकार चले जाने के बाद और बेलजी की यात्रा के पश्चात् पटना लौटने पर इंदिरा जी ने जे.पी. से उनके कदम कुंआ स्थित मकान पर मिलने का समय मांगा। जे.पी. जब प्रातः उनसे मिलने का इंतजार कर रहे, उस समय वे नेहरू परिवार के अपने पुराने सम्बन्धों की यादें मन ही मन दोहरा रहे थे। उन्हें याद आ रहा था, कैसे वे 1929 में अमेरिका से सात साल बाद पढ़ाई पूरी करके भारत लौटे थे। वे विद्यार्थी जीवन में मार्कसिस्ट थे, भाई (पं. नेहरू) के समझाने पर स्वतंत्रता संग्राम में तल्लीन हो गये थे तथा उसके बाद कांग्रेस के तत्वावधान में 1934 में सोशलिस्ट नेताओं, जैसे आचार्य नरेन्द्र देव, अशोक मेहता, राम मनोहर लोहिया के साथ मिलकर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बनाई।

इंदिरा जी को इस बात से कुछ बेचैनी सी रही, कि एक बार नेहरू जी ने जे.पी. को अपने उत्तराधिकारी के रूप में देखा था। सन् 1953 में नेहरू जी ने जे.पी. को अपने मंत्रिमण्डल में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया था। वे चाहते थे, जे.पी. उपप्रधानमंत्री बनें। पं. नेहरू के करीबी रिश्तेदार, जो एक आई.सी.एस. अफसर थे, ने ''एड मैमोआर'' (स्मरण पत्र) में लिखा है, पण्डित नेहरू के इस आमंत्रण के बारे में, कि उन्हें मंत्रिमण्डल में ऐसा साथी चाहिए, जो बता सके कि वो, (पं. नेहरू) प्र.मंत्री के रूप में कहाँ गल्ती कर रहे हैं। पं. नेहरू जे.पी. को मंत्रिमण्डल में ही, विपक्ष की भूमिका देना चाहते थे, पण्डित नेहरू ने जे.पी. से इस प्रस्ताव को लेकर अनुनय किया, मनुहार की और विनम्र विनती की पर जे.पी. अपने इन्कार पर अडिग रहे। पं. नेहरू ने यह तर्क दिया कि वे चाहते हैं कि पुराने सोशलिस्ट कांग्रेस में लौटें, जिससे वे (पं. नेहरू) पार्टी में परम्परावादी, राइटविंग तत्व का दबाव बर्दाश्त कर सकें। जून 1953 में प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी (पी.एस.पी.) की बैठक ने कांग्रेस-पी.एम.पी. के विलय पर मंथन भी किया। अशोक मेहता, जे.पी. के सरकार जॉइन करने के पक्ष में थे, राम मनोहर लोहिया आदि प्रस्ताव के खिलाफ। बैठक में किसी ने जे.पी. पर आरोप लगा दिया कि वे पद के भूखे हैं। आरोप सुनकर जे.पी. रो पड़े और पावर पॉलिक्टिस से दूर रहने का निश्चय किया।

जे.पी. की पसंद शायद महात्मा गांधी का उत्तराधिकारी बनने की ज्यादा थी, बनिस्पत पं. नेहरू के सहायक। गांधी जी ने भी एक बार जे.पी. से कहा था कि तुम मेरे सच्चे शिष्य हो, जो अंग्रेजों की ''लैगेसी'' (विरासत) को मिटाना चाहता है, जबकि नेहरू केवल अंग्रेजों को हटाना चाहते हैं, तथा जे.पी. एक नैतिक द्वन्द में फंसे रहते हैं, सही उद्देश्य की पूर्ती के लिए, सही रास्ता व साधन प्राप्त करने के लिये। जैसे विनोबा भावे का भूदान आंदोलन तथा चम्बल के डाकुओं को आत्मसर्मपण कराना आदि। इंदिरा गांधी, जे.पी. के इन आन्दोलनों को ''कन्फ्यूज़्ड'' व अव्यावहारिक मानती थीं। पर वे जानती थीं कि जे.पी. की ''मॉरल अथॉरिटी'' (नैतिकता) भारी है, और इसलिए बेलजी के बाद, पदच्युत् इंदिरा गांधी, पुनः स्थापित होने की लड़ाई के दौरान जे.पी. से मिलने आईं थीं। मीटिंग पचास मिनट चली। पत्रकार ऊपर आये, जे.पी. की मीटिंग के बारे में प्रतिक्रिया लेने, क्योंकि इंदिरा जी हाथ हिलाते हुए, यह कहकर चली गईं थीं, ''यह तो व्यक्तिगत मुलाकात थी।'' जे.पी. ने यह जरूर कहा कि, उन्होंने इंदिरा जी से कहा कि, ''जितना तुम्हारा भूतकाल उज्जवल रहा है, उतना ही तुम्हारा भविष्य भी उज्जवल हो।''

जब यह बात फैली कि, जे.पी. ने इंदिरा जी से क्या कहा, तो हंगामा मच गया कि, जे.पी. इंदिरा गांधी के बारे में ऐसा कैसे कह सकते थे? कुलदीप नैय्यर ने फोन करके, जे.पी. के पुराने विश्वासी, निजी सहायक प्रशान्त से कहा, ''इंदिरा गांधी का भूतकाल एक काला अध्याय था, उज्जवल नहीं।'' कुलदीप इमरजैंसी का जिक्र करते थे। जनता पार्टी के अन्य नेता भी इतने ही कुद्ध थे। प्रशान्त ने सारे ''मैसेज'' जे.पी. तक पहुंचा दिये।

जे.पी. ने प्रत्युत्तर में कहा, ''घर आये को दुआ दी जाती है, या बद्दुआ देनी चाहिये।'' पर, सच बात तो यह भी है कि, जे.पी. का जनता पार्टी के नेताओं से मोहभंग सा हो गया था, तथा शायद वे इन जनता पार्टी के नेताओं से ज्यादा नाराज़ थे, बनिस्पत इंदिरा गांधी से। जे.पी. ने जनता पार्टी को एक साल का समय दिया था, अपना काम दिखाने के लिए, तथा जो प्रगति इन नेताओं ने इस दिशा में दिखाई थी, उससे जे.पी. काफी असंतुष्ट थे।

अक्टूबर 1978 में जनता पार्टी के नेताओं ने जे.पी. से बहुत आग्रह किया, कि वो एक वक्तव्य जारी करके अपील करें, कि जनता इंदिरा गांधी को वोट न करें। उस समय इंदिरा गांधी, चिकमंगलूर, कर्नाटक से उपचुनाव लड़ रही थीं, संसद में जाने के लिए। जॉर्ज फर्नांडिस, जो उस समय जनता पार्टी की केन्द्रीय सरकार में उद्योग मंत्री थे, ने जे.पी. से बहुत मिन्नतें कीं कि वे अपील जारी करें। जे.पी. ने मना कर दिया, ''मैं कोई राजनीतिक लड़ाई नहीं लड़ रहा हूं। मेरे लिए वह अध्याय समाप्त हो गया है। अब आप लोग यह राजनीतिक लड़ाई लड़ रहे हैं।'' इंदिरा गांधी की तानाशाही हुकूमत को खत्म करने के लिए उन्होंने जो राजनीतिक लड़ाई लड़ी थी, वो जे.पी. के अनुसार उस दिन खत्म हो गई, जब उन्होंने (जे.पी. ने) मोरारजी देसाई का प्रधानमंत्री के रूप में चयन किया था।

एक सवाल का पूर्ण जवाब आज तक नहीं मिला कि 18 जनवरी 1977 को इमरजैंसी के दौरान इंदिरा गांधी ने यकायक देश में आम चुनाव कराने की घोषणा क्यों की। उनको उस समय यह घोषणा करने के लिए मजबूर करने वाला, कोई विशेष कारण नज़र नहीं आता। सतही तौर पर यह लगने लगा था कि, अब उनकी खिलाफत कुछ कम हो रही थी, तथा अब राजगद्दी पर उनकी पकड़ पहले से ज्यादा दिख रही थी, और कानूनी तौर पर पन्द्रह महीने बाकी थे, उनका कार्यकाल पूरा होने में। आर.के. धवन, बंशीलाल, संजय गांधी और उनके मित्र उस समय चुनाव कराने के सख्त खिलाफ थे। संजय की राय थी, ''इन लोगों को फरवरी में जेल से रिहा कीजियेगा तथा उसके बाद, मानसून के बाद, अक्टूबर/नवम्बर में चुनाव कराइयेगा। क्योंकि तब तक ''ये लोग कुत्ते बिल्ली जैसे लड़ रहे होंगे।''

पर, नवज्योति के तत्कालीन सम्पादक महेश शर्मा, जो चुनाव की घोषणा के दिन शाम को राष्ट्रदूत के दफ्तर आये थे, कुछ राजनीतिक गुफ्तगू करने, उनकी सोच ठीक इसके विपरीत थी। महेश जी ने मुझे सम्बोधित करते हुए कहा था, ''आपका तो पटना से सम्पर्क बहुत पुराना है। वहां अनाज स्टोर करने के लिए एक अजीबोगरीब पर विशाल गोलघर के निर्माण का मकसद था, अकाल के समय के लिए जनता के वास्ते, अनाज इकट्ठा करके रखा जाये। दुर्भिक्ष के वक्त एलान किया गया कि तुरन्त गोलघर पहुंचिये और अनाज ले लीजिए। अकाल काफी दिनों से चल रहा था, जनता तुरन्त आनन-फानन में पहुंची, क्योंकि मन में भय था, कि अगर देर से पहुंचे, तो तब तक गोदाम खाली न हो जाये।'' महेश जी के कहने का भावार्थ था, इतनी जल्दी इन लोगों के जेल से छूटते ही चुनाव कराये जा रहे हैं, कि विपक्ष को कुछ तैयारी कराने का मौका ही नहीं मिलेगा। अपने चुनाव चिन्ह से भी जनता को अच्छी तरह अवगत नहीं करा पाएंगे। चुनाव का घोषणा पत्र भी तैयार नहीं हो पायेगा। उम्मीदवार ही नहीं मिल पायेंगे। दुर्भिक्ष पीड़ित जनता की तरह, अपने कुर्ते की झोली बनाकर, जितना ले जा सकें ले लें।

कुछ ऐसी ही राय आई.बी. व अन्य इंटैलिजैंस एजेंसियों ने इंदिरा गांधी को शायद दी होगी, की इंदिरा जी की जीत आसान होगी। एक थिंक टैंक ने आकलन दिया था, कि इंदिरा जी पुनः सत्ता में लौटेंगी। नटवर सिंह ने इस मुद्दे पर कहा, ''यह बात सबके मन में साफ होनी चाहिए, कि, इंदिरा गांधी ने विपक्ष के नेताओं की रिहाई के बाद तुरन्त चुनाव कराने का निर्णय, इसलिए लिया, क्योंकि उन्हें पूर्ण विश्वास था, कि, वे जीतेंगी।''

इस बहस से शायद कभी भी किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पायेंगे, कि, मतदान की तिथी इंदिरा गांधी के लिए माफिक और उपयुक्त थी या नहीं। पर इस बात की सत्यता को नहीं नकारा जा सकता कि, उनको हराने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका एक ही व्यक्ति की थी, जयप्रकाश नारायण की। जे.पी. ने विपक्ष की सब पार्टियों को, उनके नेताओं को एक ही माला में पिरोकर रखा। जे.पी. ने सीधी, सरल एक ही बात कही जनता से, इंदिरा गांधी की तानाशाही, भ्रष्टाचार को हटाना है, और जनता ने वह कर दिखाया। जब मेनका गांधी ने जे.पी. को अपनी व्यक्तिगत दिक्कतें गिलाईं, कैसे उनके ''फोन टैप'' किये जा रहे हैं, उनके खत उन तक पहुंचने से पहले ही खोल लिये जाते हैं, जे.पी. वाकई में बहुत कुपित हुए। उनके एक साथी से पूछे बिना नहीं रहा गया, ''फिर इंदिरा गांधी ने भी तो विपक्ष के नेताओं के फोन ''टैप'' किये थे....?'' जे.पी. ने बेवाक जवाब दिया, ''पर अब प्रजातंत्र पुनः स्थापित कर दिया गया है।''

जब तक जे.पी. मन से इंदिरा गांधी सरकार को हटाने के युद्ध में शामिल थे, विपक्ष के पास ''आइडियोलॉजिकल कम्पास'' (सोच और विचार धारा की दृष्टि से सही रास्ता दिखाने वाली कम्पास) थी। ''सम्पूर्ण क्रान्ति'' केवल सत्ता में आने के लिए अपनाया गया, सुविधाजनक नारा नहीं था। पर, जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद, जे.पी. का मन उचाट हो गया, क्योंकि जिन ''कारणों से'' जनता ने नई पार्टी का साथ दिया था, ईमानदारी से, उत्साह से, वो स्मृतियाँ शेष होने लगे थीं, और जनता पार्टी के शीर्षस्थ नेताओं का ''फुल टाइम'' काम राजनीतिक उठा पठक हो गया था।

जे.पी. ने जनता पार्टी की अन्तिम सेवा यह की, कि जब चौधरी चरण सिंह, बाबू जगजीवन राम व मोरारजी देसाई के बीच संघर्ष सा छिड़ गया कि प्रधानमंत्री कौन बने, तब जे.पी. को जिम्मेवारी सौंपी गई, जिसे उपयुक्त समझें, उसके नाम पर ''टिक'' कर दें। जे.पी. की ''चॉइस'' मोरारजी देसाई थे। इसके बाद किसे कौन सा ''विभाग'' मिले: चौधरी साहब को गृह विभाग सौंपा गया, जनजीवन बाबू केवल ''रक्षामंत्री'' बनने को तैयार नहीं थे, उपप्रधानमंत्री का पद भी चाहते थे। जे.पी. ने हस्तक्षेप करके उन्हें यह कहकर राजी किया कि रक्षामंत्री भी उतना ही बड़ा व महत्वपूर्ण ओहदा है।

पर इस प्रकरण से और पार्टी के ऐसे ही कुछ प्रकरणों से जे.पी. का मन काफी खट्टा हो चुका था। यहां तक कि वे जनता पार्टी की विजय के उत्सव के रूप में रामलीला मैदान पर आयोजित आमसभा में भी नहीं गये। मधु लिमये उन्हें सम्मान पूर्वक लेने भी आये और काफी देर बैठे भी रहे, जे.पी. का निर्णय बदलवाने के प्रयास में। लेकिन जे.पी. ने साफ कहा, ''मेरा युद्ध, इंदिरा जी की भ्रष्ट व डिक्टेटरशिप वाली सरकार हटाने तक सीमित था। आगे आप लोगों की लड़ाई है, आप ही लड़िये।''

मधु लिमये के लौट जाने के बाद, वे इंदिरा जी से मिलने गये। वे बाहर ''पोर्च'' पर उनके आने का इन्तजार कर रही थीं। ''जे.पी. के विश्वासपात्र पी.ए. कुमार प्रशान्त के अनुसार, जे.पी. ने इंदिरा जी के कंधे पर हाथ रखा और यह कहते हुए घर में दाखिल हुए, ''खेल में हारजीत होती रहती है, इसको खेल की तरह ही लेना चाहिए।''

जनता पार्टी से जे.पी. की दूरियां बढ़ने से पार्टी को ''नुकसान'' तो हुआ ही, देश का राजनीतिक माहौल और मूल्य इस तरह बदले कि अभी तक नीचे गिरने की वह यात्रा बदस्तूर जारी है, और कई बार तो विश्वास नहीं होता कि हम मूलतः वो ही लोग हैं, जिन्होंने महात्मा गांधी के कहने पर स्वतंत्रता संग्राम लड़ा था, जो नैतिक सिद्धांत व फिलॉसफी पर आधारित था और उसी तरीके से लड़ा गया था, वो आज केवल कल्पना लगती है। यह राजनीतिक पतन अपने यौवन और तरुणाई पर आया इमरजैंसी में, और पूर्ण परिपक्व हुआ उस समय, जब इंदिरा गांधी ने पुनः सत्ता में आने के लिए ''साम, दाम, दण्ड और भेद'' का खुलकर उपयोग किया। उन दिनों पत्रकारों से बातचीत करते हुए उन्होंने अपने प्रतिद्वंदियों को सम्बोधित किया, ''मेरे पिता सन्त थे, मैं नहीं हूं।'' नैतिकता (मॉरैलिटी) व राजनीति का पूर्ण विग्रह हुआ, तीनों वरिष्ठ वयोवृद्ध नेताओं, देसाई, चरणसिंह और बाबू जगजीवनराम, की असुरक्षा की भावना का ही नहीं, वरन् हर कमज़ोरी का सुनियोजित तरीके से इंदिरा जी ने पूरा लाभ उठाया। और धोखा, साजिशें, पीठ में छुरा घोंपना, ऐसी 'नैचुरल'' बात हो गईं जैसे सांस लेना। और इंदिरा जी वापस आ गईं। और राजनीतिज्ञों की दृष्टि में यह प्रमाणित हो गया, कि राजनीति का मतलब ही यह होता है। इंदिरा गांधी ''रोल मॉडल'' हो गईं, उनके बाद आने वाली राजनीतिज्ञों की पीढ़ियों के लिए, चाहे वे किसी पार्टी के हों। वे उनका पूर्णतया अनुसरण करने लगे। कैसे इंदिरा जी ने अपने प्रतिद्वंदियों को धूल चटाई थी। उनका (इंदिरा जी का) आकार पार्टी से भी बड़ा हो गया। देश की जनता हतप्रभ थी। उसने तो सोचा था, कि उसने आपातकाल के उन्नीस महीनों में जो भय और यातनाएं सही थीं, उसके कारण सम्पूर्ण क्रान्ति का स्वप्न पूरा हुआ था और इसीलिए इंदिरा गांधी का तख्ता पलटा था। पर राजनीतिज्ञों ने जनता की इस जीत का श्रेय अपने-अपने राजनीतिक चातुर्य, साजिशों और चालों को भी दिया। वे भूल गये कि आपतकाल के दौरान संजय गांधी के नाम से रुह कांपती थी। जनता में सिरहन फैल जाती थी। संजय गांधी ने निर्दयतापूर्ण ''सौंदर्यीकरण अभियान'' चलवाया था। उसका सबसे बड़ा उदाहरण था, अप्रेल 1976 में जामा मस्जिद के पास तुर्कमान गेट पर बुलडोज़र से डेढ़ सौ पक्के मकानों को ध्वस्त करना। महिलाएं चीखती चिल्लाती रहीं, और बच्चे दहाड़-दहाड़ कर रोते रहे। परिवारों को, जहां वे जिन्दगी भर से रह रहे थे, वहां से 24 किलोमीटर दूर ''बसाया'' गया। लोग इतने डरे हुए थे, कि, वे इस बारे में बात भी नहीं कर रहे थे, कि ''क्या हुआ।'' क्योंकि समाचार पत्रों पर सेंसर लगा था, शायद ही कुछ छपा हो इस बारे में अखबारों में।

संजय गांधी के जबरन नसबंदी प्रोग्राम को ''फैमिली प्लानिंग'' का ''सभ्य'' नाम दिया गया था। उस समय के सरकारी आंकड़ों के अनुसार 70 लाख पुरुष 1976 में ''स्टैरलाइज़'' हुए थे। ऐसे भी किस्से आये थे कि किसानों को धमकी देकर, दबाव से ''स्टैरलाइज़'' किया गया। धमकी प्रायः यह होती थी, कि पानी व बिजली बंद कर दी जायेगी, अगर उन्होंने ''बात'' नहीं मानी। पिताओं को डराया गया, कि उनके बच्चों को स्कूल में एडिमशन नहीं मिलेगा, अगर वे स्टैरलाइज़ नहीं हुए।

धीरे-धीरे निराशा व भय, क्रोध में तब्दील होने लगा। 1976 के अन्त में, जब कुछ पत्रकार मित्रों के साथ मैं तुर्कमान गेट ''रीसैटलमैंट'' कॉलोनी गया, तो लोगों को बुदबुदाते सुना, ''एक बार चुनाव आने दो, हम सबक सिखायेंगे।'' जनता का विश्वास था, उसने आपातकाल में अपने हृदय में ''पूर्ण क्रांति'' की पवित्र आग, ऐसे जलाकर रखी जैसे ''मंदिर में लौ दिये की।'' पर राजनीतिज्ञ उसे समझ नहीं पाये और इस संदर्भ में ये पंक्तियां याद आती हैं, ''मैं दिल हूँ इक अरमान भरा, तू आके मुझे पहचान ज़रा...।'' राजनीतिज्ञों ने जनता की ''मंदिर के दिये की लौ'' को एक दियासलाई की तिल्ली समझा, जिससे, सिगरेट तो सुलग गयी और तिल्ली को जमीन पर फेंककर आगे बढ़ गये।

सत्ता खोने के 28 महीने बाद इंदिरा जी पुनः चुनाव लड़कर जीत कर आईं, और सरकार बनाई। तो राजनीतिज्ञों के ज़हन में तो स्थापित हो गया कि राजनीति का मतलब ही यह है कि ''पावर एट एनी कॉस्ट'', यानी सत्ता में आना ही चाहिये, चाहे इसके लिए कुछ भी कीमत चुकानी पड़े।

जे.पी. मार्च 1977 से जनता पार्टी से अलग हो गये थे, तथा अक्टूबर 79 में गुज़र गये, अतः राजनीति के बारे में दूसरा पहलू समझने व समझाने वाला बचा ही नहीं था। एक तरह से होड़ सी लग गई, कौन कितना सिद्धांत हीन, अनैतिक, असंवैधानिक काम कर सकता है, सत्ता पाने के लिए और फिर सत्ता में बने रहने के लिए। जनता पार्टी की सरकार बनने के कुछ दिन बाद, केबिनेट ने गृहमंत्री चौधरी चरण सिंह की पहल पर निर्णय लिया कि नौ राज्यों की कांग्रेस सरकारों को बर्खास्त किया जाए। तर्क यह दिया गया कि इन राज्य सरकारों ने भी, इंदिरा गांधी की आम चुनाव में हार के बाद हुकूमत करने का जनाधार (मैनडेट) खो दिया था। 11 जून 1977 को इन राज्यों में चुनाव हुए, तथा जनता पार्टी सात राज्यों, यूपी, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल, हरियाणा, बिहार और उड़ीसा में जीती। दो गैर कांग्रेस पार्टियां, सी.पी.एम और अकाली दल पश्चिम बंगाल और पंजाब में जीतीं। कांग्रेस इन सभी राज्यों में बुरी तरह हारी। फिर चौधरी साहब की पार्टी लोकदल (बी.एल.डी.), समाजवादी पार्टी व जनसंघ ने जीत का केक बांट लिया। लोकदल ने बिहार में पुराने सोशलिस्ट कर्पूरी ठाकुर, यू.पी. में राम नरेश यादव और हरियाणा में देवीलाल को मुख्यमंत्री बनवा लिया। जनसंघ के हिस्से में राजस्थान, हिमाचल व मध्य प्रदेश आए, जहां भैरोंसिंह शेखावत, शान्ता कुमार व कैलाश जोशी को मुख्यमंत्री बनवाया जनसंघ हाई कमान ने। विधायकों की बैठक में मतदान कराकर मुख्यमंत्री की घोषणा के प्रजातंत्रीय तरीके को तिलाजंलि दे दी गई थी। उदाहरण के लिए महारावल डूंगरपुर लक्ष्मण सिंह को विधान सभाध्यक्ष बनाकर साइड-लाइन किया गया, क्योंकि वे स्वतंत्र पार्टी के सदस्य थे, जनसंघ के नहीं थे।

गठन के 28 महीने बाद ही जनता पार्टी की सरकार गिर गई, और फिर चुनाव हुए। इंदिरा जी की पार्टी 353 लोकसभा सीटें जीती। बंगला देश के युद्ध के बाद, पाकिस्तान के विभाजन के बाद, अपनी लोकप्रियता के शिखर के समय, इंदिरा जी ने इससे एक सीट कम जीती थी। परन्तु लोकसभा चुनाव के बाद इंदिरा गांधी ने नौ राज्यों की सरकार को बर्खास्त कर दिया। वो ही तर्क देकर, जैसा 1977 के मध्य में जनता पार्टी ने दिया था, कि केन्द्र में हार के बाद इन पार्टियों ने हुकूमत करने का जनाधार (मैनडेट) खो दिया है।

नशे की व सरकारी रूतबे की एक सी ही फितरत होती है। नियमित खुराक (डोसेज) बढ़ाती रहनी पड़ती है, वही पुराना ''सरूर'' पाने के लिए। और जब ''मॉरल कम्पास'' पहले ही, इंदिरा जी के समय में, इमरजैंसी के दौरान तोड़ चुके थे तो ''अपराध बोध'' (गिल्ट) का सवाल ही कहां उठता है। राजनीतिज्ञों को ''मॉरल कम्पास'' तोड़ने में इतनी आसानी इसलिए भी हुई कि वो अपना ''आइडियोलॉजिकल कम्पास'' पहले ही खो चुके थे। और इस प्रक्रिया का खुला नृत्य, इमरजैंसी व उसके बाद की उठापटक में देखने को मिला। तब शायद ही कोई राजनीतिज्ञ बचा था, जिसने अपनी निष्ठा नहीं बदली, चाहे फर्नांडिस, राजनारायण या जगजीवन राम जैसे वरिष्ठ नेता हों। छोटे मोटे नेताओं की बिसात ही नहीं थी।

इंदिरा जी के बारे में विस्तार से लिखने वाले एक लेखक ने इंदिरा जी की विचारधारा की ''ग्रोथ'' व परिपक्वता के बारे में कहा है कि 1930 के दशक में इंग्लैंड में, अपने पिता पं. नेहरू व पति फिरोज़ गांधी के प्रभाव में इंदिरा जी का राजनीतिक सोच वाकई में ''उदारवादी'' व लैफ्टलीनिंग, ''लैफ्ट उन्मुख'' था। पर 1950 के दशक में, उनका सोच कांग्रेस के महारथियों, गोविन्द वल्लभ पन्त व यू.एन. ढ़ेवर से प्रेरित हुआ और वे ''राइटिस्ट'' हो गईं। इसके बाद, 1960 के दशक में तथा 1970 के दशक की शुरूआत में उनका और उनकी सरकार के चिंतन ने पुनः ''लैफ्ट टर्न'' लिया, मार्क्सवादी पी.एन. हक्सर और वामपंथी मित्रों के नजदीकी सानिध्य के कारण। 1973-74 के बाद जब से संजय गांधी, जो घोर साम्यवाद विरोधी थे, कांग्रेस पार्टी के मामलों में निर्णायक भूमिका निभाने लगे थे, इंदिरा जी भी, सरकार संचालित (ड्रिवन) विकास के रास्ते से विमुख सी होने लगी थीं, पर उनकी भाषा तब भी समाजवादी (सोशलिस्ट) ही होती थी। इसी धारा में 1 मार्च 1982 में उन्होंने लोकसभा में कहा, ''रैग्युलेशन्स'' (नियम-कायदों) की एक ही 'वर्च्यू'' (गुण) है, कि यह उत्पादन पर ''रिस्ट्रिक्शन'' (नियंत्रण) लगाता है। उत्पादन को प्रतिबंधित करता है।

''कृपया हमें और समाजवादी मत बनाइये,'' 1963 में एक स्पष्ट (कैन्डिड) इंटरव्यू में उन्होंने स्वीकार किया, ''मेरी कोई पॉलिटिकल फिलॉसफी'' (राजनीतिक विचारधारा व दर्शन) नहीं है। मैं किसी ''वाद'' (इज़्म) में विश्वास नहीं करती हूं। मैं यह भी नहीं कह सकती कि, समाजवाद में रूचि केवल इसलिए है, क्योंकि यह समाजवाद है। मेरे लिए, वह सिर्फ एक औज़ार है (''फॉर मी इट इज़ जस्ट ए टूल'')।

इसलिए धीरे-धीरे, अगर इस सोच के कारण, इमरजैंसी और उसके बाद की असफल ''खिचड़ी'' सरकार, देश का राजनीतिक पर्व बनकर रह गई तो कोई आश्चर्य नहीं हुआ। पर राजस्थान में ऐसा नहीं हुआ। क्योंकि एक ''सिम्पिलस्टिक थ्योरी'' यह है कि इन दोनों घटनाओं ने इस राज्य का कल्चर, चरित्र व प्रशासनिक शैली बदल दी। इस ''सामन्तवादी'' राज्य में कमाई करने वाला बनिया, वैश्य, व्यापारी, बाहर जाकर कमाई करता था और योद्धा एवं वीर अन्यत्र युद्ध करके, अपनी सल्तनत बढ़ाते थे। राजस्थान की भूमि ने कोई खास वर्ग संघर्ष नहीं देखा था, या भोगा था। अतः आंख की शर्म, लिहाज, मुरव्वत, रूतबा, अहमियत रखते थे। यह माहौल प्रारम्भिक काल में राजस्थान की विधानसभा में साफ दिखता था, जाने-माने राष्ट्रीय स्तर की सी.पी.आई. के नेता, जोधपुर के एच.के.व्यास, पहली विधानसभा के सदस्य थे, उनके करीबी मित्र हजारी बाबू, ''रैडिकल ह्यूमनिस्ट'' और संभ्रात कुलीन, लखनऊ में पढ़े लिखे मथुरा दास माथुर से हंसी मजाक में कहते थे, ''तुम भी अपने नेता (सुखाड़िया) जैसे अब पूंजीवादी हो गये।'' माथुर साहब भी उसी लहजे में जवाब देते थे, ''एक फर्क है, सर। मैं मूलतः ''प्रोग्रेसिव'' हूं, पर कभी-कभी पूंजीवादी हो जाता हूं। पर मेरा नेता मूलतः पूंजीवादी है, कभी-कभी सुविधानुसार, ''प्रोग्रेसिव'' जामा पहन लेता है।'' यह लिहाज-मुरव्वत का, नोक-झोंक का विधानसभा का मजमा टूटा जब अशोक गहलोत पहली बार विधायक बने, तब भैरोंसिंह शेखावत मुख्यमंत्री थे। जब विधानसभा में दोनों का आमना-सामना हुआ, तब गहलोत की आंखों में शेखावत के रूतबे का सम्मान, उम्र की वरिष्ठता का लिहाज नहीं था, एक तिरस्कार की, एक चुनौती की खनक थी। आखिर गहलोत इमरजैंसी की संतान थे, खिचड़ी सरकार की उठा-पटक व राजनीतिक धोखाधड़ी को देखते हुए बड़े हुए थे। इन्हीं संस्कारों की मोहर उनके तीन शासन काल में प्रखर से प्रखरतम की ओर बढ़ती चली गई। चरमराते प्रशासनिक ढांचे को किसी तरह परम्पराओं की जर्जर दीवारों ने संभाला हुआ था, जो अब, पूरी तरह ढह गई। फोन टैपिंग, बजरी ठेके, ट्रांसफर पोस्टिंग के खर्च, अखबारों का आर्थिक गला घोंटने की प्रक्रिया को और मजबूत और ''एफिशियन्ट'' बनाने पर जैसे गहन अनुसंधान किया गया हो। पर भाषा वो ही ''सोशलिज़्म'' की थी। कोई आश्चर्य नहीं कि सरकारी स्कूलों की छत गिर रही हैं। जयपुर की एतिहासिक विरासत यह है कि रोड पर गढ्ढे ज्यादा हैं, सड़कें कम। काश इमरजैंसी, राजस्थान में भी पर्व होकर ही रह जाती, और टूटा हुआ प्रशासनिक ढांचा देकर नहीं जाती, संस्कृति व कल्चर को विकृत नहीं कर जाती, योग्य ''चिन्तनशील,'' तीन बार के मुख्यमंत्री की महत्वाकांक्षा तिरस्कार तो दिला रही है, पर मरने नहीं देती।

हाल ही में गहलोत ने इमरजेंसी लगाने के फैसले को प्रतिरक्षा देते हुए कहा कि इमरजेंसी किन्हीं विशिष्ठ कारणों में लगाई गई थी, उन्होंने यह भी आरोप लगाया कि वर्तमान भाजपा सरकार ने ''अनडिक्लेयर्ड'' (अघोषित) इमरजेंसी आपातकाल लगाया है।

परन्तु सवाल यह है कि इमरजेंसी के दौर में अपना राजनैतिक जन्म लेने वाले इन राजनेतागण, जिन्होंने स्वयं सत्ता का स्वाद लेकर, सत्ता में बने रहने के लिए सभी तरह के हथकंडें अपनाए और संवेदानिक नैतिकता का गला घौटा है, को अधिकार है कि वे किसी भी सरकार के खिलाफ टीका टिप्पणी करने, जिसने भी अपने कार्यकाल में संवैधानिक सीमाओं को तोड़ा हो? ऐसे नेताओं को सवाल उठाने का क्या नैतिक अधिकार है? क्योंकि गहलोत ने भी तानाशाही रवैये में ऐसे ही हथकंडों को अपनाये थे। और तीसरे कार्यकाल के 60 महीनों में ही 42 पत्रकारों के खिलाफ एफ.आई.आर. दर्ज करवाई थी।

इन बयानबाजियों के प्रचार-प्रसार से गहलोत और उन जैसे सत्ता भोग चुके राजनैताओं को सस्ते प्रचार और गांधीवादी छवि बनाने का मौका तो मिलता है परन्तु उन अखबारो, पत्रकारों और विपक्षी नेताओं की आलोचनाएं केवल एक दिखावा और खोट से भरा पांखड़ लगता है। इन नए तरीकों से सुर्खिया तो बटोरी जा सकती है, परन्तु पाठकों के मन में केवल अविश्वास ही पैदा होता है।

राजेश शर्मा

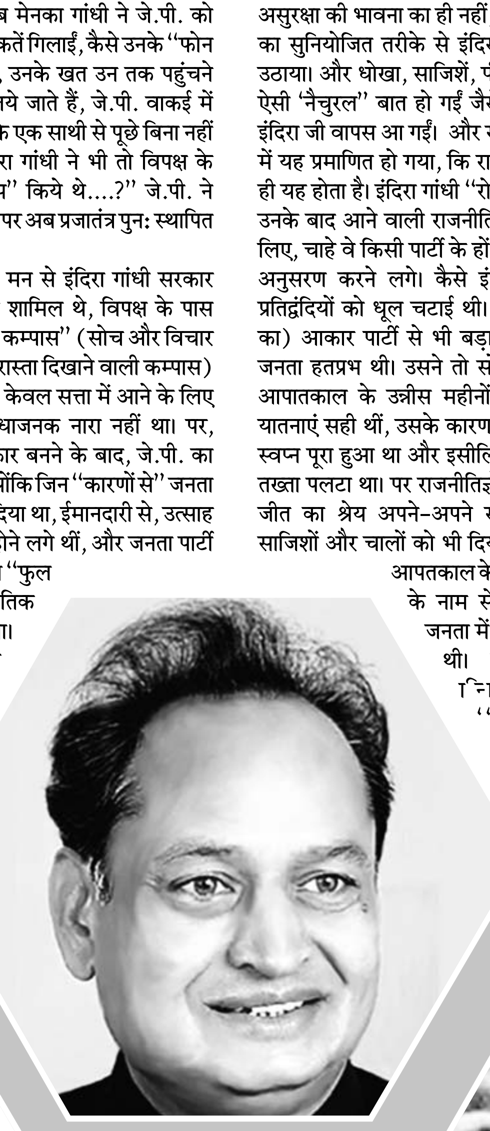

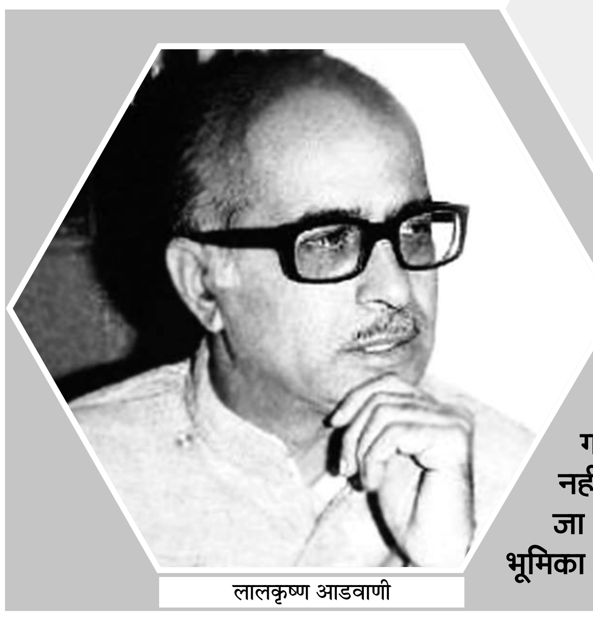

लालकृष्ण आडवाणी

राजनारायण

इस बहस से शायद कभी भी किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पायेंगे, कि, मतदान की तिथी इंदिरा गांधी के लिए माफिक और उपयुक्त थी या नहीं। पर इस बात की सत्यता को नहीं नकारा जा सकता कि, उनको हराने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका एक ही व्यक्ति की थी, जयप्रकाश नारायण की।

राष्ट्रदूत (एचयूएफ) के लिए मुद्रक एवं प्रकाशक सोमेश शर्मा द्वारा वतन प्रेस, जी-1-201, रीको औद्योगिक क्षेत्र, हिण्डौन सिटी, जिला करौली से मुद्रित एवं प्रकाशित। संपादक-राजेश शर्मा, आर.एन.आई. नं. RAJHIN/2008/27147 जयपुर कार्यालय: सुधर्मा एम.आई.रोड, जयपुर। फोन: 2372634, 4103333-34, फैक्स : 0141-2373513, कोटा कार्यालय : पलायथा हाऊस, छत्रपति शिवाजी मार्ग, कोटा। फोन: 2386031, 2386032,फैक्स:0744-2386033, बीकानेर कार्यालय : कुम्भाना हाऊस, हनुमान हत्था, बीकानेर। फोन: 2200660, फैक्स 0151-2527371, उदयपुर कार्यालय: आयड मैन रोड आयड, उदयपुर। फोन: 2413092, फैक्स : 0294-2410146, अजमेर कार्यालय: राष्ट्रदूत भवन, चुंगी नाका के पास, अजमेर। फोन: 2627612, फैक्स:0145-2624665 जालोर कार्यालय :- जी 1/63, इन्डस्ट्रीयल एरिया, फेस प्रथम, जालोर। फोन226422,226423, फैक्स: 02973-226424 चूरू कार्यालय : एच-150, रीको औद्योगिक क्षेत्र, चूरू, फोन : 256906, 256907, फैक्स: 01562-256908